प्रवचन-८५, गाथा-८६, सोमवार, कार्तिक कृष्ण १५, दिनांक १९-११-१९७९

नियमसार, ८६ गाथा

उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८६।।

टीका:—यहाँ उन्मार्ग के परित्याग... प्रतिक्रमण कहते हैं। सत्य प्रतिक्रमण उसे कहते हैं कि जिनमार्ग के अतिरिक्त जितने अन्यमार्ग हैं, उनका उसे त्याग हो। किसी भी अन्यमति के मार्ग की प्रशंसा या पक्ष उस ओर का हो, वहाँ तक वह उन्मार्ग है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा पाठ है न? '**उम्मग्गं परिचत्ता**' - **उन्मार्ग के परित्याग और सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार का वर्णन किया गया है।** निश्चय से तो कुन्दकुन्दाचार्य, अष्टपाहुड़ में ऐसा कहते हैं कि '**णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया**' (सूत्रपाहुड़, गाथा २३), बाह्य में नग्नपना और अभ्यन्तर में विकल्परहित नग्नदशा, आनन्द की दशा, वह मार्ग है। उससे अन्य उन्मार्ग है। '**णग्गो विमोक्खमग्गो**' नग्नपने में मोक्षमार्ग है। अकेला बाह्य नग्न नहीं। '**सेसा उम्मग्गया**' इसके अलावा जितने मार्ग (है, वे) सब उन्मार्ग हैं।

उम्मग्गं परिचत्ता पहला शब्द यह है। **उन्मार्ग के परित्याग...** कठिन पड़े ऐसा है। जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यमत हैं, वे सब एकान्त मत मिथ्यादृष्टि हैं। जैन में भी यह स्थानकवासी और श्वेताम्बर है, वह भी उन्मार्ग है; वह जैनमार्ग नहीं। कठिन लगता है।

कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान (सीमन्धर) के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। सम्यग्दर्शनसहित चारित्र था, परन्तु विशेष निर्मलता हुई, आकर इन शास्त्रों की रचना की और यह भी शास्त्र (नियमसार में) कहते हैं कि मैंने मेरे लिए रचा है। यह नियमसार। आहाहा! समयसार में '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' है न? '**वोच्छामि समयपाहुड़**'-इसका अर्थ ऐसा किया उसने कि कुन्दकुन्दाचार्य तो वक्ता हैं, कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु वक्ता और कर्ता स्वयं हैं। मैं निज वैभव से कहूँगा - ऐसा आया न? पहले आया '**वोच्छामि**' (अर्थात्) कहूँगा। फिर कहा, निज वैभव से कहूँगा। मेरे निज वैभव से मैं समयसार कहूँगा। अकेले वक्ता ही हैं और कर्ता नहीं - ऐसा नहीं है। उसमें - अष्टपाहुड़ में ऐसा

लिखा है। वे वक्ता थे, कर्ता नहीं। अरे! प्रभु! क्या करता है? और यह कहते हैं कि मैंने मेरे आत्मा के लिये यह नियमसार बनाया है। मोक्षमार्ग के कर्ता और वक्ता दोनों थे। समझ में आया? आहाहा! मात्र वक्ता ही हैं, और कर्ता नहीं – ऐसा नहीं है।

इसलिए यहाँ आया कि **उन्मार्ग के परित्याग और सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार का वर्णन किया गया है।**

जो शंका,... कुछ भी शंका वीतरागमार्ग, निर्ग्रन्थमार्ग पूर्ण वीतरागस्वभावीमार्ग में कुछ शंका और कुछ अन्यत्र भी होगा, कुछ होगा – ऐसी शंका जिसे न हो, उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! अब अभी सब एक होओ... एक होओ... एक होओ.. ऐसा कहते हैं। यहाँ इनकार करते हैं। उन्मार्ग को छोड़ दे। अभी यह चला है – सब एक होओ.. एक होओ.. सबका धर्म एक है। आहाहा! कठिन काम, भाई! वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने कहा, ऐसा कहा न? **सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार...** आहाहा! और वह मैं मेरे लिये यह कहता हूँ। मेरे लिये यह बनाया है, ऐसा कहते हैं। इसलिए मार्ग का कर्ता भी मैं हूँ और वक्ता भी मैं हूँ। ऐसा हुआ न, भाई? तो इसमें इनकार करते हैं। वह लेख आये थे न उसमें? अरे रे! क्या हो?

शंका... कुछ भी गहरे-गहरे वीतराग सर्वज्ञ निर्विकल्पस्वरूप, यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप रमणता, यह चारित्र, इसमें से कुछ भी शंका हो कि दूसरे में कुछ-कुछ तो होगा। ऐसे सब बड़े राजा मानते हैं, सेठ मानते हैं, अरबोंपति मानते हैं, जिनकी सभा में लाखों लोग इकट्ठे होते हैं, तो उसमें कुछ होगा या नहीं?

मुमुक्षु : सच्चा न हो परन्तु कुछ होता तो अवश्य है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी सच्चा नहीं है। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है। किसी व्यक्ति के लिए नहीं। यह तो प्रभु! तेरा सत्स्वरूप है। वीतरागस्वरूप ही तेरा है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार से राग से, निमित्त से, भेद से, कुछ भी धर्म मनाया हो, वह सब उन्मार्ग है। आहाहा! कहो, पहली यह बात करते हैं। उसे प्रतिक्रमण होता है, जिसे उन्मार्ग का एक भी अंश न हो और त्याग किया हो और यथार्थ वीतरागमार्ग में कहा हुआ जो आत्मा, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, उसे सच्चा प्रतिक्रमण और सच्चा धर्म कहने में आता है।

शंका, कांक्षा,... कुछ भी इच्छा रहे। अन्यमत में कुछ भी इच्छा, कुछ तो होगा, कुछ तो थोड़ा-बहुत होगा। वीतराग ने कहा है, वह सब पूरा कह सके नहीं, एक व्यक्ति ऐसा कहता है, इसलिए कुछ दूसरा भी होगा। यह कहा है, इसके अतिरिक्त दूसरा भी कुछ होगा। यह कौन कहते हैं? जिनेन्द्र! 'जिनेन्द्र' है न? पानीपत का वर्णी। ऐसा कहते हैं, जो वस्तु है, वह पूरी कही नहीं गयी; इसलिए वीतराग के कहे हुए के अतिरिक्त का कुछ दूसरा भी मार्ग होगा। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करे?

यहाँ तो कहते हैं, जरा भी अन्य के मार्ग का विपरीत अंश हो, उसे छोड़ दे। आहाहा! हम इतने वर्ष से इस सम्प्रदाय में पोसाये, इतने साधुओं को माना और यह सब माना। भले चाहे जो माना हो, छोड़ दे। उन्मार्ग है, वह छोड़ दे। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने कहे हुए इस मार्ग को अंगीकार कर, तब सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है। **कांक्षा...** इच्छा नहीं होती। आहाहा! आत्मा के स्वभाव की भावना के अतिरिक्त, वीतरागभाव के अतिरिक्त दूसरी कोई इच्छा के विकल्प का आदर नहीं है।

विचिकित्सा,... आहाहा! पहले में शंका अर्थात् राग नहीं, कांक्षा अर्थात् द्वेष नहीं, शंका अर्थात् शंका नहीं, कांक्षा अर्थात् राग नहीं। **विचिकित्सा,...** अर्थात् द्वेष का अंश नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग अकेला है। वीतराग के मार्ग में कड़क बात लगे, कठिन बात लगे परन्तु उस पर द्वेष नहीं, ग्लानि नहीं, ऐसा कहते हैं। एक समय में पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त ज्ञान, आनन्द, शान्ति से भरपूर; जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं, ऐसा परमात्मा स्वयं है। उसमें जरा भी अनादर, ग्लानि करना नहीं। आहाहा! ऐसा सब स्वरूप कहाँ होगा? शरीर में तो कुछ दिखता नहीं। आँखें बन्द करे तो अन्धकार दिखता है परन्तु वह अन्धकार दिखता है, उसे देखनेवाला कौन है? किसके अस्तित्व में वह अन्धकार दिखता है? यह सब दिखता है, वह ज्ञान की पर्याय दिखती है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय का स्वरूप ऐसा है कि स्व-पर को जाने। वह पर को जाने, इसलिए पर से जानती है और पर है, इसलिए जानती है - ऐसा भी नहीं है। ऐसा वीतरागमार्ग है, उसके प्रति ग्लानि करना नहीं। आहाहा! कहीं अन्दर में गहरे से भी अनादर करना नहीं। यह क्या कहते हैं? इतना आत्मा! निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग में, निगोद का एक राई जितना टुकड़ा लो, (उसमें) असंख्य शरीर और एक

शरीर में अनन्त जीव और एक जीव परिपूर्ण आनन्द का कन्द, शक्ति का सागर आत्मा है। यशपालजी! आहाहा! पूर्ण स्वरूप क्षेत्र से बड़ा नहीं, इसलिए भाव से ऐसा बड़ा कैसे होगा? ऐसी ग्लानि करना नहीं, प्रभु! यह विचिकित्सा ऐसे करना नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अन्यदृष्टिप्रशंसा... चौथा बोल है न? उसका नीचे अर्थ किया है। **अन्यदृष्टिसंस्तव=(१) मिथ्यादृष्टि का परिचय; (२) मिथ्यादृष्टि की स्तुति। (मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है...)** चौथा बोल। है? चौथा बोल है न? जिसकी श्रद्धा विपरीत है, वह अंश भी कहीं... उसकी स्तुति, उसका परिचय, उसका संग, उसकी सोबत में रहना, उस सोबत में रहने से ठीक अपने को लाभ मिलेगा, यह मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना, वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है। वह अन्यदृष्टि की प्रशंसा है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! आहाहा! अब यह सब इकट्ठा डालते हैं। आता है न जगत... क्या कहलाता है? पत्र। जगत-जगत। जैनजगत? पत्र। उसमें सब डालते हैं। सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य, सर्वज्ञ... अमुक मुनि ऐसे स्थानकवासी में थे। दिगम्बर में ऐसे मुनि... सबका इकट्ठा खिचड़ा...

मुमुक्षु : जगत.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला जगत? है। आया था। जैनजगत। जैनजगत। जैनजगत अर्थात् तीनों का सब। कठिन पड़े, भाई! आहाहा! ऐसे-ऐसे बड़े हेमचन्द्राचार्य जैसे हो गये। यशोविजयजी जैसे हो गये। हरिभद्राचार्य हो गये। चाहे जो हो गये।

मुमुक्षु : यशोविजयजी स्वयं कहते थे कि हम साधु ही नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो स्वयं बेचारे बाद में कह गये थे कि हम साधु नहीं हैं, हम तो संघवीजी हैं। बाहर निकलने नहीं दिया। यह बहुत बुद्धिवाला व्यक्ति और विचारक बहुत। उन्हें लगा कि साधुपना अपना यह नहीं है, बापू! साधुपना अलग बात है। बाहर बात प्रसिद्ध की, वहाँ लोगों ने बन्द किया कि बाहर निकलना नहीं। यहीं के यहीं रहो। ऐसा सुना है। लेख में आया, ऐसा सुना है। आहाहा! कठिन बात, भाई! किसी की निन्दा की बात नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

सर्वज्ञदेव वीतराग, ऐसा कहा न? सर्वज्ञदेव वीतराग ने जो मार्ग वर्णन किया, उस

मार्ग का स्वीकार और उसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पना से (मार्ग कहा, उसका अस्वीकार)। सर्वज्ञ हैं, उन्होंने तीन काल, तीन लोक देखे हैं। उन्होंने जो कहा है, वह यथार्थ वस्तु है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कल्पित बातें करने में मोक्षमार्ग मनवाया, उस मार्ग का स्वीकार छोड़ दे। आहाहा! तब इसकी पहिचान करनी पड़ेगी न, कि विपरीत कौन है? अविपरीत कौन है? सत्य क्या है? असत्य क्या है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा!

किसी के प्रति ग्लानि नहीं। किसी के प्रति बैर-विरोध नहीं। वह भगवान है। पर्याय में भूला है। पर्याय छोड़ेगा, तो भगवान होगा परन्तु जो है, उस अनुसार तो इसे जानना चाहिए। आहाहा! नेमचन्दभाई तो ऐसा कहते थे, भाई! कि यह विद्यासागर कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में अनुभूति नहीं होती, अनुभूति मुनि को होती है, बस! आहाहा! जो सम्यग्दर्शन अनन्त काल में नहीं हुआ (ऐसा) अपूर्व, अपूर्व आनन्द का स्वाद, अनुभूति का स्वाद... आहाहा! पूरा परिपूर्ण परमात्मा की अन्दर भानसहित की प्रतीति... आहाहा! लोग बाह्य त्याग की महिमा में रुककर वास्तविक तत्त्व की महिमा छोड़ देते हैं। बाह्य त्याग देखे, नग्नपना, वस्त्र छोड़े, यह छोड़ा, यह पकड़ा। आहाहा! कठिन बात है।

यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं ने स्वयं के लिए लिखा है। जगत को सुनाते हैं। मार्ग के कर्ता भी हैं और मार्ग के वक्ता भी हैं। अकेले वक्ता हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! टीका में तो बहुत जगह आता है न, हम ऐसा अनुभव करते हैं, हम जानते हैं। सर्वविशुद्ध... में (आता है), हम जानते हैं कि ऐसा आत्मा है। आहाहा! गाथायें हैं न सर्वविशुद्ध की? उनमें आया है। हम जानते हैं। आहाहा! हम अनुभव से कहते हैं। अनुभव से-हम अनुभव में हैं, उसमें से कहते हैं। आहाहा! स्वरूप के कर्ता भी हैं और वक्ता भी हैं। उन्हें मात्र वक्ता कहना, वह अनादर है। समझ में आया? आहाहा! थोड़ा अन्तर, अब कहाँ अन्तर है। बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

यह यहाँ कहते हैं **अन्यदृष्टिप्रशंसा...** बहुत विद्वत्ता हो, लाखों लोग सभा में आते हों, इसलिए उसमें कुछ तो होगा या नहीं? ऐसे अन्यदृष्टि की प्रशंसा छोड़ दे। आहाहा! परन्तु अन्यदृष्टि कहना किसे, यह खबर बिना छोड़े क्या? आहाहा! **अन्यदृष्टिप्रशंसा और...**

मिथ्यादृष्टि की महिमा के वचन बोलना। आहाहा! यह तो भाई! महाविद्वान है। लाखों लोगों को उपदेश देता है। लाखों लोगों को जैनधर्म में झुकाता है। दृष्टि मिथ्यात्व है और उसकी ऐसी महिमा करना नहीं, कहते हैं। आहाहा! तब तो सब ऐसा कहते हैं। प्रत्येक मार्ग ऐसा कहता है।

मुमुक्षु : हमारा मार्ग सच्चा, कोई ऐसा कहे कि हमारा मार्ग मिथ्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई ऐसा कहे कि हमारा मार्ग मिथ्या है ? सच्चा-झूठा कौन है, इसकी परीक्षा करनी पड़ेगी न ? बापू! आहा! कपड़ा लेने जाए तो भी जाँच करता है। कपड़े में कोई खजूरा नहीं, गाँठ पड़ी हुई हो न खजूरा ? सरीखा बुना हुआ नहीं। ऐसे वस्त्र होता है न ? गाँठ पड़ जाए न ? खजूरा होवे तो। खोट होवे तो वह न ले। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टि...** की महिमा, वचन बोलना, वह **अन्यदृष्टिसंस्तवरूप...** है। आहाहा! कठिन काम। यह तो अलग-थलग हो जाए ऐसा है। लोग कहते हैं न कि अमिलनसार है। बापू! मार्ग तो यह है। प्रभु! तेरे हित का, तेरे कल्याण का पन्थ यह है न, भाई! आहाहा! सर्व जीव इस पन्थ में आओ, इस पन्थ में आओ। कल्याण करो, प्रभु! तुम्हारा कल्याण करो। आहाहा! **अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव...** स्तुति। स्तुति अर्थात् महिमा। ऐसे **मलकलंकपंक से विमुक्त...** ऐसे **मलकलंकपंक...** मलकलंकपंक-कादव। आहाहा! ऐसे **मलकलंकपंक से विमुक्त (-मलकलंकरूपी कीचड़ से रहित)...** आहाहा!

नियमसार है। अन्तिम गाथा में स्वयं कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। आहाहा! **'णियभावणाणिमित्तं'** कुन्दकुन्दाचार्य जैसे... आहाहा! जो तीसरे नम्बर में आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। वे ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरे लिए बनाया है, बापू! आहाहा! यह तो कर्म की पनौती उतर जाए, उसकी बात है और आत्मा की पवित्रता प्रगट हो, उसकी बात है। लोग कहते हैं न कि यह कर्म की पनौती इसे लगी है, परन्तु वह धूल भी नहीं, सुन न! तूने उल्टी दृष्टि लगायी है, वह पनौती है। आहाहा!

अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तवरूप... महिमा करना और उसकी प्रशंसा करना, वह सब छोड़ दे। आहाहा! चाहे जैसा विद्वान हो, लाखों लोग इकट्ठे होते हों।

जवाहरलालजी यहाँ भावनगर आये थे। जवाहरलाल (नेहरु) गुजर गये न? गाँधीजी के बाद थे जवाहरलाल। लाखों लोग इकट्ठे होते थे। होवे न? लौकिक बात, सब धर्म समान... सब धर्म समान... ऐसी बातें करे तो सबको बहुत पसन्द आवे। आहाहा!

यहाँ तो एक सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कोई भी मार्ग सत्य है नहीं। उन्मार्ग है। आहाहा! और वह भी दिगम्बर सम्प्रदाय में भी वाड़ा में बँधा हुआ है, उसमें वास्तविक भूल हो, वह भी सत्य नहीं है। आहाहा! कहो, मोहनभाई! तुम तो बहुत वर्ष से आये हो। (संवत्) १९८० के वर्ष से। बोटाद नहीं? १९८०। कितने वर्ष हुए? २० और ३६ = ५६। उसमें आये थे न? उपाश्रय के साथ। ८० के साल में। आहाहा! भाई! मार्ग कोई अलग प्रकार है। मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

पाँच प्रकार का जो मैल है, उसे छोड़ दे। और **शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव)...** आहाहा! **शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव)...** आहाहा! यह कहीं छठे-सातवें गुणस्थानवाले की बात नहीं है। चौथे गुणस्थानवाला शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? यह विद्यासागर ऐसा कहते हैं कि चौथे (गुणस्थान) में अनुभूति नहीं होती। मुनि को ही होती है। भाई कहते थे। नेमचन्दभाई के साथ बहुत चर्चा हुई थी परन्तु बाहर त्याग, जवान व्यक्ति है। शरीर कुछ दिखता भी है। आचार्यपद है। लोग मानते हैं। क्या हो? प्रभु! आहाहा!

शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव) बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक... बुद्ध अर्थात् बौद्धमत है न? क्षणिकवाद? वे आदि सब पन्थ। **बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप...** मार्ग नहीं परन्तु मार्गाभास। आहाहा! **मार्गाभासरूप...** मार्गाभास अर्थात् मार्ग नहीं परन्तु मार्ग जैसा दिखायी दे। आहाहा! नग्न मुनि हो, अकेला रहता हो, अकेला आवे, अकेला जावे, जंगल में रहे। ऐसा दिखायी दे कि... आहाहा! परन्तु दृष्टि विपरीत। क्या है, इसकी जगत को खबर नहीं है। आहाहा! आता है न? वनवास में रहते हैं। आया था। बहुत बार वनवास में अनशन आदि किये, वनवास रहा, उससे क्या हुआ? वनवास में अकेला रहा, किसी की सहायता बिना... आहाहा! छह-छह महीने तक आहार न ले। वह चीज़ क्या है? प्रभु!

निर्विकल्प आनन्द का सागर पूर्णानन्द प्रभु, पर्याय भी जहाँ ऊपर तैरती है—ऐसा जो द्रव्यस्वभाव.. आहाहा! अकेला वीतराग और निर्मल आनन्द से भरपूर तत्त्व पूर्ण.. पूर्ण..

पूर्ण.. पूर्ण.. अभेद है, ऐसी जो दृष्टि है... आहाहा! वह शुद्धनिश्चयदृष्टि है। वह शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! अब इसमें अधिक लोग प्रसन्न हों, ऐसा कहाँ है? अधिक लोग इकट्ठे हों, प्रसन्न हों (ऐसा कहाँ है)। आहाहा!

बुद्धादिप्रणीत... अन्यमति का कहा हुआ। **मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप उन्मार्ग का परित्याग करके,...** वह सब उन्मार्ग है। आहाहा! तुम्हारे मक्षी में तो भारी गड़बड़ उठी थी। फूलचन्दजी! मक्षी में भी यह मार्ग और यह मार्ग और यह मार्ग। यहाँ तक श्वेताम्बर दर्शन करे, पश्चात् दिगम्बर दर्शन करे। इस दरवाजे से ऐसे निकलना... अर र र! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या हो? सर्वज्ञदेव का विरह पड़ा, समकिती देव आकर मदद करे, उसका विरह पड़ा। आहाहा! यह मार्ग रह गया। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ प्रभु में कुछ भी राग से लाभ होता है, निमित्त से लाभ होता है, आत्मा अल्पज्ञ ही है, सर्व व्यापक है-आदि अनेक विपरीतताओं को छोड़ दे। आहाहा!

उन्मार्ग का परित्याग करके,.... परित्याग कर कहा है। देखा? पाठ में है न? '**उम्मग्गं परिचत्ता**' मात्र '**चत्ता**' नहीं। मात्र उन्मार्ग को छोड़ना, ऐसा नहीं। '**उम्मग्गं परिचत्ता**' समस्त प्रकार से छोड़कर। आहाहा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। परि है (अर्थात्) समस्त प्रकार से छोड़ दे। भाई! ऐसा अवसर कब मिलेगा? प्रभु! मुश्किल से समय मिला है न! दुनिया को नहीं पहुँचाए। दुनिया तो अनेक प्रकार से बोलेगी, बाँधेगी परन्तु यह मार्ग है, इसमें तू पहुँच सकेगा। क्योंकि तेरा स्वरूप ही यह है। आहाहा!

यह सैंतालीस शक्ति का वर्णन, भाई! अमृतचन्द्राचार्य में आता है। जयसेनाचार्य में नहीं आता। सैंतालीस नय, जयसेनाचार्य में नहीं आते। अव्यक्त का भी जैसा वर्णन अमृतचन्द्राचार्य ने किया है, वैसा अव्यक्त का भी वर्णन उसमें-जयसेनाचार्य की टीका में नहीं है। भाई! यह अभी देखता था। अव्यक्त के छह बोल का वर्णन जैसा अमृतचन्द्राचार्य ने किया है, वैसा वर्णन नहीं है। प्रवचनसार में सैंतालीस नय कहे हैं, वह नहीं। सैंतालीस शक्तियों का वर्णन किया है... आहाहा! वह भी नहीं। अमृतचन्द्राचार्य अर्थात्... आहाहा! अमर.. अमर बना दिया। सैंतालीस शक्तियों में कितना वर्णन! इत्यादि अनेक शक्तियाँ वापस। आहाहा! और सैंतालीस नय। ऐसे अनन्त नय वापस। ऐसा है न? जितने वचनपंथ उतने नयपंथ। आता है न? आहाहा! ऐसा वर्णन।

प्रवचनसार में तो ऐसा कहा, प्रभु! यह मार्ग कहता हूँ न, तू आज ही अंगीकार करना, हों! वायदा करना नहीं, प्रभु! यदि तुझे रुचता हो, रुचा हो, उसे वायदा क्या? आहाहा! सुहाता हो और रुचा हो, उसे वायदा किसका? आहाहा! देखो! उनके वचन तो देखो! कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाले। अब उन्हें इसमें (कुछ लोग) काष्ठासंगी सिद्ध करते हैं। अरर र! जैनधर्म की परम्परा में वे नहीं हैं, ऐसा लिखा है। परम्परा में जयसेनाचार्य हैं। आहाहा! अरे प्रभु! प्रभु! बाहर त्याग, नग्नपना, जवान अवस्था, आचार्य (हो)। क्या हो? प्रभु!

उन्मार्ग का परित्याग करके, व्यवहार से पाँच महाव्रत,... अब कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार दोनों जो वीतराग ने कहा हुआ है, उसमें आ जा—ऐसा कहते हैं। दूसरे में तो व्यवहार भी नहीं है। निश्चय तो है ही नहीं परन्तु दूसरे का व्यवहार भी नहीं है। वीतराग ने जो मुनि के पंच महाव्रत कहे, पंच महाव्रत। वे **पाँच महाव्रत, पाँच समिति,...** व्यवहार। समिति, भगवान ने जो पाँच समिति कही। **तीन गुप्ति, पाँच इन्द्रियों का निरोध,...** आहाहा! व्यवहार के अट्ठाईस मूलगुण। ये वीतरागमार्ग में निश्चयसहित व्यवहार है। अन्यत्र कहीं ऐसे है नहीं। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक... सामायिक चऊविंशतु वन्दन, प्रतिक्रमण (आदि छह)। **इत्यादि अट्ठाईस मूलगुणस्वरूप...** आहाहा! इन **अट्ठाईस मूलगुणस्वरूप महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम करता है,...** ऐसे महाव्रत आदि लेकर, अव्रत में से छूटकर व्यवहार से इतना स्थिर करता है। व्यवहार में पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, इन्द्रिय निरोध करके पर से छूटकर इतना व्यवहार से स्थिर करता है। व्यवहार कहते हैं। अब बाद में निश्चय कहेंगे। आहाहा! ऐसा व्यवहार भी अन्यमत में नहीं है। आहाहा! माने, अब ऐसा मानने से क्या होगा? अट्ठाईस मूलगुण श्वेताम्बर में नहीं है। वहाँ साधु के सत्ताईस गुण कहे हैं। यह तो अट्ठाईस मूलगुण विकल्प है। ऐसा विकल्प सर्वज्ञ के वीतरागमार्ग में निश्चयसहित पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा!

यह वीतरागसर्वज्ञ परमेश्वर **महादेवाधिदेव...** ने कहा हुआ व्यवहार, हों! ऐसा कहते हैं। अज्ञानियों ने कहा हुआ व्यवहार, वह नहीं। **महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-**

वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम... अव्रत आदि को छोड़कर ऐसे व्रत के व्यवहार में आवे, परन्तु वह निश्चयसहित। आहाहा! समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण में तो यह आता है कि वस्त्ररहित नग्नपना 'जन्मे प्रमाणेरूप भासित'—भगवान ने तो ऐसा कहा है। जैसा जन्म होता है, ऐसा मुनि का नग्नरूप होता है परन्तु मात्र नग्न नहीं। वह निश्चयसहित व्यवहार ऐसा होता है। आहाहा! यह व्यवहार है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। यह सर्वज्ञ देवाधिदेव परमेश्वर ने-वीतराग ने (जो) व्यवहार कहा; वीतराग होने से पहले ऐसा निश्चयसहित व्यवहार आता है। अकेला निश्चय नहीं होवे और व्यवहार (पालन करे), वह व्यवहार नहीं है। तथा सर्वज्ञ के अतिरिक्त (किसी) ने कहा हुआ जो व्यवहार, वह व्यवहार नहीं है। आहाहा! ऐसा मूलगुण स्वरूप... आहाहा! अष्टपाहुड़ में आता है न? कि जो मूलगुण में दोष है, उसे सब दोष ही है। मूलगुण। उसके लिए बनाया हुआ आहार, चौका बनाकर आहार ले, उसके मूलगुण में से ही उसका सब खोट है। आहाहा! क्या हो? गाँव में आये हों, तब क्या उन्हें मरने देना? जो प्रमुख सामने हों, उन्हें करना पड़ता है। बापू! इसमें दुनिया की लज्जा और शर्म भी रखने जैसी नहीं है। भगवान की लज्जा रखनी हो, उसे दुनिया की लज्जा छोड़ देनी पड़ेगी। आहाहा!

इसलिए शब्द प्रयोग किया है न? कि ऐसे जो मूलगुण **महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम करता है, और शुद्धनिश्चयनय से...** यह व्यवहार है, ऐसे को निश्चय ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेला व्यवहार, वह नहीं। **शुद्धनिश्चयनय से सहजज्ञानादि...** स्वाभाविक ज्ञान, आनन्द आदि। अन्तर भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान अकृत्रिम जो अनादि स्वभाव, वस्तु का स्वभाव जो ज्ञान अनन्त महिमावन्त, अनन्त आनन्द, अनन्त श्रद्धा / दर्शन / प्रतीति, अनन्त वीर्य, अनन्त पुरुषार्थ, प्रभुता, ऐसी स्वाभाविक वस्तु का जो स्वभाव है। **सहजज्ञानादि शुद्ध गुणों से अलंकृत,...** आहाहा! शुद्ध पर्याय है। गुण तो त्रिकाल है न? उसके आश्रय से पर्याय (होती है)।

शुद्ध गुणों से अलंकृत,... ऐसे शुद्ध गुणों से जो (अलंकृत है)। यह उसका अलंकार है। जैसे शरीर में गहने सोने के, हीरा-माणिक के रखते हैं। हीरा और माणिक के अलंकार बनाते हैं। आहाहा! जामनगर का दरबार था न? उसके पास नीलमणि का पूरा कोट था, कोट। हीरा का, नीलमणि का कोट। वह जब मार्ग में निकले, तब पहनता था।

जामनगर का दरबार। करोड़ों रुपये की आमदनी थी, इसलिए फिर पहले से बहुत वर्ष से चले। अकेला नीलमणि का कोट। एक-एक नीलमणि की लाखों की कीमत, उसका पूरा कोट, पूरा मुकुट। आहाहा! वह अलंकार नहीं, कहते हैं। यह हीरा-माणिक के चैतन्य भरपूर, भगवान भरपूर अन्दर ऐसे अनन्त गुणों से अलंकृत, ऐसा बादशाह, राजा आत्मा है। आहाहा!

शुद्ध गुणों से अलंकृत, सहज परम चैतन्यसामान्य... स्वाभाविक परम सामान्य त्रिकाली, दर्शन सामान्य त्रिकाल। **(सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निज परमात्मद्रव्य...** आहाहा! पहले तो अनन्त शुद्ध गुण आदि से अलंकृत है, (ऐसा कहा)। उसके पश्चात् मुख्य इतने शब्द लिये हैं। चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेष, यह उसका प्रकाश है। दर्शन और ज्ञान का जिसका प्रकाश, जिसका स्वरूप ही दर्शन और ज्ञान, अनन्त दर्शन और ज्ञान, उसका-चैतन्य का प्रकाश का उसका स्वभाव है, ऐसा चैतन्यरत्न। आहाहा!

(सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निज परमात्मद्रव्य में... आहाहा! देखा? ऐसा निज परमात्मा, निज-स्वयं का परमात्मद्रव्य, यह प्रतिक्रमण कहते हैं, धर्म कहते हैं, सामायिक कहते हैं, भगवान की स्तुति कहते हैं, भक्ति आवश्यक कहते हैं। यह आवश्यक है। आहाहा! **निज परमात्मद्रव्य में शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है,...** दो बातें ली हैं। उसमें ऐसा लिया था कि स्थिर परिणाम करता है। व्यवहार में था न? वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम व्यवहार से करता है। व्यवहार-शुभभाव; और यह निश्चय शुद्धभाव। निश्चय शुद्धभाव स्थिर करता है, वहाँ शुभभाव व्यवहार का वीतराग न हो, तब होता है। दोनों को स्थिर भाव करता है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! ऐसा जो प्रकाश। **ऐसे निज परमात्मद्रव्य में...** निज / अपना द्रव्य; भगवान परमात्मा नहीं, तीर्थंकर नहीं। **निज परमात्मद्रव्य में शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है,...** शुद्ध वीतरागमय स्थिरभाव करता है। आहाहा!

(अर्थात्) जो शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि जीव व्यवहार से अट्ठाईस मूलगुणात्मक मार्ग में... इसका स्पष्टीकरण किया है, और **निश्चय से शुद्ध गुणों से शोभित दर्शनज्ञानात्मक परमात्मद्रव्य में स्थिरभाव करता है,...** यह व्यवहार-निश्चय का स्पष्टीकरण किया। आहाहा! निश्चयसहित ऐसा व्यवहार वीतरागमार्ग में होता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र

कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! परम सत् दिगम्बर जैनधर्म अनादि सनातन सत्य में यह निश्चयसहित का ऐसा व्यवहार वहाँ होता है। आहाहा!

वह मुनि.... आहाहा! ऐसा जो हो, **वह मुनि....** प्रतिक्रमण की उत्कृष्ट बात है न अन्तिम। **निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** वह व्यवहार है और यहाँ निश्चय है, उसे **निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** आहाहा! वह निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है। आहाहा! एक कलश में कहीं व्यवहार और निश्चय आता है। निश्चय और व्यवहार का मार्ग आदरे, ऐसा आता है। दो शब्द एकसाथ आते हैं। साथ में होते हैं न? निश्चय और व्यवहार। वही निश्चय है, वहाँ ऐसा कहा है। कहीं श्लोक है। प्रवचनसार में है।

यहाँ यह कहा, निश्चयस्वरूप ज्ञान, दर्शन और आनन्द में स्थिर करता है और शुभभाव अन्दर इन्द्रिय का निरोध आदि, उस शुभभाव में स्थिर करता है। ऐसा निश्चय और व्यवहार होता है। आहाहा! अर्थात् निश्चयवाले को व्यवहार चाहे जैसा हो, ऐसा नहीं है, इसके लिए यह बात करते हैं। निश्चय जो आत्मा का श्रद्धा, ज्ञान-चारित्र जिसे निश्चय है, उसे व्यवहार फिर चाहे जिस प्रकार का हो, ऐसा नहीं है। ऐसा ही व्यवहार होता है। आहाहा! **वह मुनि निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** आहाहा!

कारण कि उसे परमतत्त्वगत (-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला)... परमतत्त्व भगवान परमात्मा... आहाहा! पूर्ण परमात्मा निर्विकल्प शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु के साथ संगवाला, सम्बन्धवाला। **परमतत्त्वगत...** है न? अर्थात् **(-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला) निश्चयप्रतिक्रमण है, इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है।** आहाहा! इसलिए वह मुनि तपोधन, जिसे आनन्द और ज्ञान का तपरूपी धन प्रगट हुआ है, वह आत्मा मुनि शुद्ध है। आहाहा!

स्वयं नियमसार में कहते हैं कि तुझसे पालन न किया जा सके परन्तु जैसी है, वैसी श्रद्धा तो रखना। भाई! आता है न? इसमें नियमसार में अन्त में। श्रद्धा तो करना। फेरफार नहीं करना कि नहीं, नहीं, मैं पालन नहीं कर सकता, इसलिए यह भी एक मार्ग है, ऐसा रहने देना। आहाहा! श्रद्धा तो जैसा भगवान ने कहा है, वैसी ही श्रद्धा रखना। ध्यान-ब्यान इतना सब न हो सकता हो तो भी श्रद्धा में तो बराबर रखना कि वस्तु यह है, वह मार्ग है।

है न इसमें? पीछे है न? १५४? १५४ गाथा। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि, परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी, परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखकमल से शोभायमान हे मुनिशार्दूल! संहनन और शक्ति का प्रादुर्भाव हो तो मुक्तिसुन्दरी के प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रायश्चित्त, निश्चयप्रत्याख्यान आदि शुद्धनिश्चय क्रियाएँ ही कर्तव्य है। यदि इस दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।** इसमें अन्तर करना नहीं कि ऐसा भी होता है... ऐसा भी होता है। श्रद्धा में तो बराबर रखना कि बापू! निश्चय तो यही होता है और व्यवहार तो यही होता है। पालन न कर सके, इसलिए तू यह भी मार्ग है, ऐसा करना नहीं। देखो न, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। आहाहा! यह कहते हैं। **इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है।** लो। फिर श्लोक कहेंगे।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)